तित्थयर

जैन भवन

चतुर्दश वर्ष : फरवरी १९९१ : दशम अंक

6418

श्री ...गरसूरि ...ंदिर, ...ांधीनगर

श्री ... सूरि ज्ञान मंदिर ... (... गांधीनगर) श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र कोबा.

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १४ : अंक १०
फरवरी १९९१

□

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सो एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७

सूची

हिन्दी जैन साहित्य में
अलंकार योजना २९१
चित्र और संभूत ३०५
त्रिषष्टि शलाका पुरुष
चरित्र ३१०
संकलन ३१७
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३१८

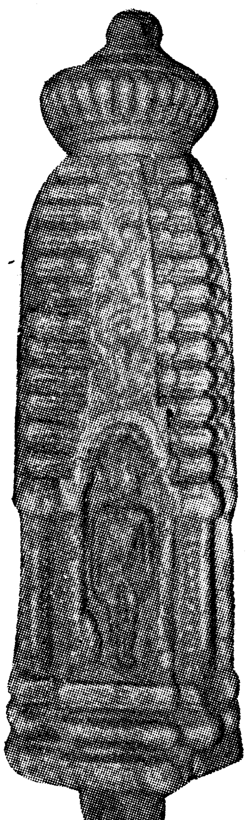

चौमुख, लच्छीपुर के निकट कंसावती नदी से प्राप्त, ११वीं सदी

हिन्दी जैन साहित्य में अलंकार योजना

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री

काव्यके दो पक्ष हैं—कलापक्ष और भावपक्ष। जैसे मानव शरीर और प्राणोंका समवाय है, उसी प्रकार कलापक्ष काव्यका शरीर और भावपक्ष प्राण है। दोनों आपसमें सम्बद्ध हैं, एकके अभावमें दूसरेकी सुस्थिति सम्भव नहीं। भाषा, अलंकार, प्रतीक योजना आदि कलापक्षके अन्तर्गत हैं और अनुभूति भावपक्षके। कोई भी कवि भावको तीव्र करने, व्यञ्जित करने तथा चमत्कार लानेके लिए अलंकारोंका प्रयोग करता है। जिस प्रकार काव्यको चिरन्तन बनानेके लिए अनुभूतिकी गहराई और सूक्ष्मता अपेक्षित है, उसी प्रकार उस अनुभूतिको अभिव्यक्त करनेके लिए चमत्कारपूर्ण अलंकृत शैलीकी भी आवश्यकता है।

हिन्दी जैन कवियोंकी कविता-कामिनी अनाड़ी राजकुलाङ्गनाके समान न तो अधिक अलंकारोंके बोझसे दबी है और न ग्राम्यबालाके समान निराभरणा ही है। इसमें नागरिक रमणियोंके समान सुन्दर और उपयुक्त अलंकारोंका समावेश किया गया है। कवि बनारसीदास, भैया भगवतीदास और भूधरदास जैसे रससिद्ध कवियोंने अभिव्यञ्जनाकी चमत्कारपूर्ण शैलीमें बड़ी ही चतुराईसे अलंकार योजना की है। वास्तविकता यह है कि प्रस्तुत वस्तुका वर्णन दो तरहसे किया जाता है—एकमें वस्तुका यथातथ्य वर्णन—अपनी ओर से नमक-मिर्च मिलाये बिना ही और दूसरीमें कल्पनाके प्रयोग द्वारा उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदिसे अलंकृत करके अंग-प्रत्यंग सौन्दर्यका निरूपण किया जाता है। कविकी प्रतिभा प्रस्तुतकी अभिव्यंजनापर निर्भर है। अलंकार इस दिशामें परम सहायक होते हैं। मनोभावोंको हृदयस्पर्शी बनानेके लिए अलंकारोंकी योजना करना प्रत्येक कविके लिए आवश्यक है।

जैन कवियोंने प्रस्तुतके प्रति अनुभूति उत्पन्न करानेके लिए जिस अप्रस्तुतकी योजना की है, वह स्वाभाविक एवं हृदयस्पर्शी है; साथ ही प्रस्तुत की भाँति भावोद्रेक करनेमें सक्षम भी। कवि अपनी कल्पनाके बलसे प्रस्तुत प्रसंगके मेलमें अनुरंजक अप्रस्तुतकी योजना कर आत्माभिव्यंजनमें सफल हुए हैं। वस्तुतः जैन कवियोंने चर्मचक्षुओंसे देखे गये पदार्थोंका अनुभव कर कल्पना द्वारा एक ऐसा नया रूप दिया है, जिससे बाह्य जगत और अन्तर्जगत्का सुन्दर समन्वय हुआ है। इन्होंने बाह्य जगत्के पदार्थोंको

अपने अन्तःकरणमें ले जाकर उन्हें अपने भावोंसे अनुरंजित किया है और विधायक कल्पना द्वारा प्रतिपाद्य विषयकी सुन्दर अभिव्यंजना की है। आत्माभिव्यंजनमें जो कवि जितना सफल होता है, वह उतना ही उत्कृष्ट माना जाता है और यह आत्माभिव्यंजन तबतक सम्भव नहीं, जबतक प्रस्तुत वस्तुके लिए उसीके मेलकी दूसरी अप्रस्तुत वस्तुकी योजना न की जाय। मनीषियोंने इस योजनाको अलंकार कहा है।

काव्यानन्दका उपभोग तभी सम्भव है, जब काव्यका कलेवर कलामय होनेके साथ अनुभूतिकी विभूतिसे सम्पन्न हो। जो कवि अनुभूतिको जितना ही सुन्दर बनानेका प्रयास करता है, उसकी कविता उतनी ही निखरती जाती है और यह तभी सम्भव है, जब उपमान सुन्दर हों। अतएव अलंकार अनुभूतिको सरस और सुन्दर बनाते हैं। कवितामें भाव प्रवणता भी तभी आ सकती है, जब रूप योजनाके लिए अलंकृत और सँवारे हुए पदोंका प्रयोग किया जाय। दूसरे शब्दोंमें इसीको अलंकार कह सकते हैं।

शब्दालंकारोंमें शब्दों को चमत्कृत करनेके साथ भावोंको तीव्रता प्रदान करनेके लिए अनुप्रास, यमक, वक्रोक्ति आदिका प्रयोग सभी जैन काव्योंमें मिलता है। "सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग। धवल परम पद रमन जगत जन अमल कमल खग"—इसमें अनुप्रासकी सुन्दर छटा है। भैया भगवतीदासके निम्न पद्यमें कितना सुन्दर अनुप्रास है। इसने अनुभूतिको कितनी तीव्रता प्रदान की है, यह देखते ही बनता है—

कटाक कर्म तोरि के छुटाक गांठ छोड़ के,
पटाक पाप मोर के तटाक दे मृषा गई।
चटाक चिन्ह जानिके, झटाक हीय आनके,
नटाकि नृत्य मानके खटाकि नै खरी ठई॥
घटा के घोर फारिके तटाक बन्ध टार के,
अटा के राम धार के रटाक राम की जई।
गटाक शुद्ध पान को हटाकि आन आन को,
घटाकि आप दानको सटाक श्यो बधू लई॥

कवि बनारसीदासने यमकालंकार की—"केवल पद महिमा कहौं, कहौं सिद्ध गुणगान" में कितनी सुष्ठु योजना की है। भैया भगवतीदासकी कवितामें तो यमकालंकारकी भरमार है। निम्न पद्यमें यमककी योजना कितनी सुन्दर की गयी है—

एक मतवारे कहें अन्य मतवारे सब,
मेरे मतवारे पर वारे मत सारे हैं।
एक पंच तत्त्व वारे एक एक तत्त्व वारे,
एक भ्रम मत वारे एक एक न्यारे हैं॥
जैसे मतवारे बकैं तैसे मतवारे बकैं,
तासों मतवारे तकैं बिना मत वारे हैं।
शान्तिरस वारे कहैं मत को निवारे रहैं,
तेई प्रान प्यारे रहें और सब वारे हैं॥

इस पद्यमें प्रथम मतवारे का अर्थ मतवाले और द्वितीय मतवारे का अर्थ मदोन्मत्त। दूसरी पंक्तिमें प्रथम मतवारेका अर्थ मतवाले और द्वितीय मतवारेका अर्थ मतन्योछावर है।

भैया भगवतीदासने 'परमात्म शतक' में आत्माको सम्बोधित करते हुए परमात्माका रूप यमकालंकार में बहुत ही सुन्दर दिखलाया है—

पीरे होहु सुजान, पीरे कारे है रहे।
पीरे तुम बिन ज्ञान, पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ॥

इस पद्यमें प्रथम पीरेका अर्थ पियरे अर्थात् हे प्रिय है और द्वितीय पीरेका अर्थ पीले है। द्वितीय पंक्तिमें प्रथम पीरेका अर्थ है पीड़े और द्वितीय पीरेका अर्थ पी-रे अर्थात् पियो इसी प्रकार निम्न पद्यमें यमकालंकार भावोंकी उत्कर्ष व्यंजनामें कितना सहायक है। साधक संसारके विषयोंसे ग्लानि प्राप्त करने के अनन्तर कहता है कि मैं बलवान कामको न जीत सका, व्यर्थ ही विषयासक्त रहा। आत्म साधना न कर मैं कामदेवके अधीन बना रहा अतः मुझसे मूर्ख और कौन होगा। जब विषयोंसे पूर्ण विरक्ति हो जाती है, उस समय इस प्रकारके भाव या विचारोंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यह सत्य है कि आत्म-भर्त्सना या आत्मालोचनाकी अग्निके बिना विकार जलकर भस्म नहीं हो सकते हैं—

मैं न काम जीत्यो बली, मैं न काम रसलीन।
मैं न काम अपनो कियो, मैं न काम आधीन॥

इस पद्यकी प्रथम पंक्ति में प्रथम न कामका अर्थ है कामदेवको नहीं और दूसरे न कामका अर्थ है व्यर्थ ही, दूसरी पंक्तिमें न कामका अर्थ है कार्य नहीं किया और दूसरे न कामका अर्थ मैंने काम, इस प्रकारका पदच्छेद कर अर्थ करने पर कामदेवके अधीन अर्थ निकलता है। इसी प्रकार निम्न पद्यमें 'तारी' शब्दके भी विभिन्न अर्थ कर पदावृत्ति की गयी है—

तारी पी तुम भूलकर, तारी तन रस लीन।
तारी खोजहु ज्ञान की, तारी पति पर लीन ॥

कवि वृन्दावनदासने भी गुरुकी स्तुतिमें शब्दालंकारोंकी सुन्दर योजना की है। 'जिन नामके परभावसों परभावकों दहो' में प्रथम परभावका अर्थ प्रभाव है और द्वितीय परभावका अर्थ परभाव—भेद बुद्धि या अन्य पदार्थ विषयक बुद्धि है।

कवि बनारसीदासने आत्मानुभूतिकी व्यंजना वक्रोक्ति अलंकारमें भी की है। इस नामरूपात्मक जगत्के बीच परमार्थतत्त्वका शुद्ध स्वरूप भेदबुद्धि द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। स्वात्मानुभव ही शुद्ध स्वरूपको प्राप्त करनेमें सहायक होता है।

अर्थालंकारोंमें उपमा, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, असम, दृष्टान्त, रूपक, विनोक्ति, विचित्र, उल्लेख, सहोक्ति, समासोक्ति, काव्यलिङ्ग, श्लेष, विरोधाभास एवं व्याजस्तुति आदिका प्रयोग जैन काव्योंमें पाया जाता है।

जैन कवियोंने सादृश्य मूलक अलंकारोंकी योजना स्वरूपमात्रका बोध करानेके लिए नहीं की है, अपितु उपमेयके भावको उद्बुद्ध करनेके लिए की है। स्वरूपमात्र सादृश्यमें उपमान द्वारा केवल उपमेयकी आकृति या रंगका बोध हो सकता है, किन्तु प्रस्तुतके समान ही आकृतिवाले अप्रस्तुतकी योजना कर देने मात्रसे तज्जन्य भावका उदय नहीं हो सकता है। अतः 'गोसदृशो गवयः' के समान सादृश्यबोधक वाक्योंमें अलंकार नहीं हो सकता। जबतक अप्रस्तुतके द्वारा प्रस्तुतके रूप या गुणमें सौन्दर्य या उत्कर्ष नहीं पहुँचता है, तब तक अर्थालंकार नहीं माना जा सकता है। अर्थालंकारके लिए "सादृश्यं सुन्दरं वाक्यार्थोपकारकम्" अर्थात् सादृश्यमें चमत्कृत्याधायकत्वका रहना आवश्यक है। तात्पर्य यह है कि जिस अप्रस्तुतकी योजनासे भावानुभूतिमें वृद्धि हो वही वास्तवमें आलंकारिक रमणीयता है। कवि बनारसीदासने निम्न पद्यमें उपमालंकारकी कितनी सुन्दर योजना की है—

आतम को अहित अध्यातम रहित ऐसो आसव महातम अखंड अंडवत है।
ताको विसतार गिलिबेकों परगट भयो, ब्रहमंड को विकासी ब्रह्ममंडवत है ॥
जामें सबरूप जो सबमें सबरूप सोपें सबनिसों अलिप्त अकाश खंडवत है।
सोहै ज्ञानभानु शुद्ध संवर को भेष धरे, ताकी रुचि रेखको अमारे दण्डवत है ॥

समदृष्टिकी प्रशंसा करते हुए कवि बनारसीदासने उपमालंकारकी अद्भुत छटा दिखलायी है। कवि कहता है—

भेदविज्ञान जग्यो जिनके घट शीतल चित्त भयो जिमि चन्दन।
केलि करें शिव मारग में जग माँहि जिनेश्वर के लघुनन्दन ॥

इस पद्यमें कविने चित्तकी उपमा चन्दनसे दी है। जिस प्रकार चन्दन शीतल होता है, आतापको दूर करता है, उसी प्रकार भेदविज्ञानीका हृदय भी। अतएव यहाँ चाँदनी उपमान और हृदय उपमेय है। समानधर्म शीतलता है तथा उपमावाची शब्द जिमि है। कवि कहता है कि जिनके मनमन्दिरमें आत्मविज्ञानका प्रकाश उत्पन्न हो गया है, उनका हृदय चन्दनके समान शीतल हो जाता है।

कवि मनरंगलालने निम्न पद्योंमें उपमालंकारकी योजना द्वारा रसोत्कर्ष करनेमें कितनी विलक्षणता प्रदर्शित की है, भावना और चिन्तनमें कितना सन्तुलन है, यह उदाहरणों से स्पष्ट है—

गिरिसम बेंच गयन्द सुमनकों खर पर चित्त चलावे।
पाय धरम लब्धि त्यागि शठ विषय भोग की ध्यावे ॥
मुसिक्याय कही अब जावो। जन्मान्तर लौ अब खावो।
ले हार मने मुसिक्याना। जिम पावत भूखो दाना ॥

कवि वृन्दावनदासने भगवद्भक्तिकी विशेषता बतलाते हुए उपमालंकारकी कितनी सुन्दर योजना की है। यद्यपि यह पूर्णोपमा है, पर इसमें आत्म-भावनाको अभिव्यक्त करनेके लिए कविने 'सुन्दर नारीकी नाक कटी है' को उपमान बनाकर 'जिनचन्द पदाम्बुज प्रीति बिना' जीवनको उपमेय मानकर भावोंको मूर्त्तिकरूप प्रदान करनेका आयास किया है—

सब ही विधिसों गुनवान बड़े, बलबुद्धि विभा नहिं नेक हटी है।
जिनचन्दपदाम्बुजप्रीति बिना, जिमि सुन्दर नारी की नाक कटी है ॥

जैन कवियोंने अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुतके भावोंकी सुन्दर अभिव्यञ्जना करनेका पूरा यत्न किया है। प्रतीकों द्वारा, साम्यरूपमें, मूर्त के लिए अमूर्त्तरूपमें, आधारके लिए आधेयरूपमें और मानवीकरणके रूपमें उपमालंकारकी योजना की गयी है। कई कवियोंने निर्जीव वस्तुओंके वर्णन या सूक्ष्म भावोंकी गम्भीर अभिव्यञ्जनामें ऐसे उपमानोंका भी प्रयोग किया है जिनसे मानवके सम्बन्धमें अभिव्यक्ति की गई है। साहित्यिक दृष्टिसे ये पद्य और भी महत्त्व रखते हैं।

सौन्दर्य और दृश्य चित्रके लिए भी जैन काव्योंमें उपमा और उत्प्रेक्षाका

अधिक व्यवहार किया है। इन अलंकारोंके सहारे इन्होंने अपनी कल्पना का विस्तार बहुत दूर तक बढ़ाया है। कवि समय-सिद्ध उपमानोंके अलावा नूतन उपमानोंका भी प्रयोग किया है। प्रसिद्ध उपमानोंके व्यवहारमें भी अपनी कलाका पूरा परिचय ये कवि दे सके हैं। चन्द्रप्रभु पुराणमें नेत्रोंकी उपमा कमलसे दी गई है। कमलके तीन वर्ण प्रसिद्ध हैं—लाल, नीला और श्वेत। बचपनमें नेत्र नीले वर्णके होते हैं, अतएव उस समयके नेत्रोंकी उपमा नील कमलसे तथा युवावस्थाके नेत्र अरुण वर्णके होने से 'कंजारुण लोचन' कहकर वर्णन किया गया है। वृद्धावस्थामें नेत्रका रंग कुछ श्वेत हो जाता है, अतः 'कंजश्वेत इव राजत' कहकर निरूपण किया है।

कवि की पहुँच कितनी दूर तक है यह उपर्युक्त उपमानोंकी योजना से स्पष्ट है। कज्जलयुक्त बालकोंकी बड़ी-बड़ी आँखें चित्तको हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। श्याम रंग भी चित्ताकर्षक और हृदयको शीतल करनेवाला होता है। अतएव केवल कमलकी उपमा यहाँ उपयुक्त नहीं हो सकती थी। इसी प्रकार युवावस्थामें अरुण रहनेसे लाल कमलकी उपमा सौन्दर्यका पूरा चित्र सामने प्रस्तुत करनेमें सक्षम है। अरुण नेत्र प्रताप, शूरता और दुस्साहसके सूचक हैं। वीर-वेषके वर्णनमें अरुण कमलवत् नेत्रोंको कहना अधिक सौन्दर्य द्योतक है।

वृद्धावस्थामें शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है तथा रक्तकी कमी होनेसे नेत्र भी स्वभावतः कुछ श्वेत हो जाते हैं। कविने वृद्धावस्थाका पूरा चित्र सामने लानेके लिए श्वेत कमलके समान नेत्रोंको बताया है। कवि वृन्दावनने जिनेन्द्रके नेत्रोंकी निम्न छप्पयके प्रथम चरणमें छः उपमाएँ दी हैं। और शेष पाँच चरणोंमें प्रत्येक उपमाके छः-छः विशेषण दिये हैं। नेत्रोंकी दूसरी उपमा कमलसे ही है, पर यह उपमा साधारण नहीं है, छः विशेषण युक्त है; अर्थात् सदल—पत्र सहित, विकसित, दिवसका, सजल-सरोवरका और मलय देशका है। तात्पर्य यह है कि भगवानके नेत्र मलयदेशके सरोवरमें विकसित दैवसिक सदल अरुण कमलके तुल्य हैं। साधारण कमलकी उपमा देने से यह अभिव्यंजना कभी नहीं हो सकती थी। कोमलता, दयालुता, सर्वज्ञता, हितोपदेशिता और वीतरागताकी भावनाएँ उक्त उपमानोंसे ही यथार्थमें अभिव्यंजित हो सकी हैं—

मीन कमल मद धनद अमिय अंतकु छवि छज्जे।
जुगल सदल अति अरुन, सघन उज्ज्वल मय सज्जे॥

हुलसित विकसित समद, दानि नाकी अति कूरे।
केलि दिवस शुचि अति उदार, पोषक अरि चूरे ॥
सम सरज नीति चित चिंत दे, वृंद मिष्ट अनशस्त्र धर।
जल मलय महत अकहत अकृत, देवदृष्टि सुखसृष्टिहर ॥

उपर्युक्त पद्यसे स्पष्ट है कि कविका हृदय उपमानोंका अक्षय भंडार है। ये उपमान प्रकृतिसे तो लिये ही गये हैं, पर कुछ परम्परा भुक्त भी हैं। ज्यों ही कवि सौन्दर्यकी अभिव्यंजना करनेकी इच्छा करता है, त्योंही उपमान उसकी कल्पनाकी पिटारीसे निकलने लगते हैं। कवि दौलतरामने भी उपमानोंकी झड़ी लगा दी है। एक ही उपमेयका सर्वाङ्गीण चित्रण करनेके लिए अनेकानेक उपमानोंका एक ही साथ व्यवहार किया है—

पद्मासद्म पद्मपद पद्मा-मुक्तसद्म दरशावन है।
कलिमल-गंजन मन-अलिरंजन मुनिजन शरन सुपावन ॥

× × ×

जाको शासन पंचानन सो, कुमति-मतंग-नशावन है।

जैन कवियोंकी एक विशेषता यह भी है कि उसके उपमान किसी न किसी भावको पुष्ट करनेके लिए ही आए हैं। विश्वमें मोहका बन्धन सबसे सबल होता है, संसारका ऐसा कोई प्राणी नहीं, जिसे मोहका विष व्याप्त न हुआ हो। मोहका तीक्ष्ण विष प्राणीको सदा मूर्च्छित रखता है। अतः कवि दौलतराम और भैया भगवतीने इस मोहका चार उपमानों द्वारा विश्लेषण किया—व्याल, शराब, गरल और धतूरा। इन चारों उपमानोंसे भिन्न-भिन्न भावनाओंकी अभिव्यञ्जना होती है। व्याल—सर्प जिस प्रकार किसी व्यक्तिको काट लेता है तो वह व्यक्ति सर्पके विषके प्रभावसे मूर्छित हो जाता है, तन-बदनका उसे होश नहीं रहता ; उसी प्रकार मोहाभिभूत हो जानेसे प्राणी भी विवेकशून्य हो जाता है। रात-दिन संसारके विषय-साधनोंमें अनुरक्त रहता है। अतएव सर्प-विष द्वारा प्रस्तुत मोहके प्रभावका विश्लेषण किया गया है। इसी प्रकार अवशेष तीन उपमान भी मोहाभिभूत दशाकी अभिव्यञ्जना करनेमें सक्षम हैं।

मिथ्यात्वकी भावाभिव्यक्तिके लिए कवि बनारसीदासने तीन उपमानोंका प्रयोग किया है—मतंग, तिमिर और निशा। इन तीनों उपमानों द्वारा कविने मिथ्यात्वके प्रभावका निरूपण करनेमें अपूर्व सफलता प्राप्त की है। मिथ्यात्वको मदोन्मत्त हाथी इसलिए बतलाया गया है कि विवेकशून्य हो

जानेपर व्यक्तिकी अवस्था मत्त हाथीसे कम नहीं होती। उसमें स्वेच्छाचारिता, अनियन्त्रित ऐन्द्रियक विषयोंका सेवन एवं आत्मज्ञानाभाव हो जाता है। इसी प्रकार अन्धकारके घनीभूत हो जानेसे पदार्थों का दर्शन नहीं हो पाता है, पासमें रखी हुई वस्तु भी दिखलाई नहीं पड़ती है और किसी अभीष्ट स्थानकी ओर गमन करना असम्भव हो जाता है। कविने उपमानके इन गुणों द्वारा उपमेय मिथ्यात्वकी विभिन्न विशेषताओंका विश्लेषण किया है। वस्तुतः उक्त उपमान प्रस्तुतके स्वास्थ्यका सुन्दर विश्लेषण करते हैं।

सम्यक्त्वकी विशेषता और विश्लेषणके लिए कवि भैया भगवतीदास, भूधरदास और द्यानतरायने चार उपमानोंका प्रयोग किया है—सिंह, सूर्य, प्रदीप और चिन्तामणि रत्न। जिस प्रकार सिंहके वनमें प्रवेश करते ही इतर जन्तु भयभीत हो जाते हैं और वे सिंहकी आधीनता स्वीकार कर लेते हैं उसी प्रकार सम्यक्त्व—आत्मविश्वास गुणके आविर्भूत होते ही व्यक्तिकी सभी कमजोरियाँ समाप्त हो जाती हैं। मिथ्यात्व—अनात्मा विषयक श्रद्धानरूपी मदोन्मत्त हाथी सम्यक्त्वरूपी सिंहको देखते ही पलायमान हो जाता है। विषयाकांक्षाएँ और द्वेषाभिनिवेश सम्यक्त्वके पहले तक ही रहते हैं, आत्म-श्रद्धानके उत्पन्न होनेपर व्यक्तिकी क्रियाएँ आत्मकल्याणके लिए ही होने लगती हैं। अतएव सम्यक्त्वके प्रभाव, प्रताप सामर्थ्य और अन्य दिव्य विशेषताओंको दिखलानेके लिए सिंह उपमानका व्यवहार किया है। इसी प्रकार अवशेष उपमान भी सम्यक्त्वकी विशेषताका पूरा चित्र सामने प्रस्तुत करते हैं।

पञ्चेन्द्रियके विषयोंकी सारहीनता कानी कौड़ी, जलमन्थन कर घृत निकालना, कुत्तेका सूखी हड्डी चबाकर स्वाद लेना आदि उपमानोंके द्वारा अभिव्यक्ति की है। उपमालंकारका वर्णन हिन्दी जैन-साहित्यमें बहुत विस्तारके साथ मिलता है। उपमाके पूर्णोपमा और लुप्तोपमा इन दोनों प्रधान भेदोंके साथ आर्थी, श्रोती, धर्मलुप्ता, उपमानलुप्ता और वाचकलुप्ता इन उपभेदोंका व्यवहार भी किया गया है। सादृश्य सम्बन्ध वाचक इव, यथा, वा, सी, से, सो, लौं, जिमि आदिका प्रयोग भी यथास्थान मिलता है।

कवि बनारसीदास उपमा और उत्प्रेक्षाके विशेषज्ञ हैं। आपके नाटक समयसारमें इन दोनों अलंकारोंके पर्याप्त उदाहरण आये हैं। निम्न पद्यमें कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा की गयी है, कल्पनाकी उड़ान कितनी ऊँची है, यह देखते ही बनेगा—

ऊँचे ऊँचे गढके कंगुरे यों विराजत है, मानो नभ लोक लीलवेको दाँत दियो है।
सोहै चिहीं उर उपबन की सघमताई, घेरा करि मानों भूमि लोक घेरि लियो है॥
गहरी गंभीर खाई ताकी उपमा बनाई, नीचो करि आनत पताल जल पियो है।
ऐसो है नगर यामें नृप को न अंग कोउ, यों ही चिदानन्दसों शरीर भिन्न कियो है॥

उत्प्रेक्षा अलंकारका कवि बनारसीदासने कितने अनूठे ढंगसे प्रयोग किया है, भावोत्कर्ष कितना सुन्दर हुआ है, यह निम्न पद्यसे स्पष्ट है—

थोरे से धक्का लगे ऐसे फट जाय मानों,
कागद की पूरी कीधों चादर है चैल की।

संसारके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारकी उत्प्रेक्षाएँ कवि रूपचन्द पाण्डेय और नयसूरिने की है। भागचन्द और बुधजनके पदों में भी उत्प्रेक्षाओंकी भरमार है। कवि भूधरदासने हेतूत्प्रेक्षाका कितना सुन्दर समावेश किया है। कल्पनाकी उड़ानके साथ भावोंकी गहराई भी आश्चर्यजनक है—

काउसग्गा-मुद्रा धरि वन में, ठाड़े रिषभ रिद्धि तज दीनी।
निहचल अंग मेरु है मानों, दोऊँ भुजा छोर जिन दीनी॥
फँसे अनंत जंतु जग-चहले, दुःखी देख करुना चित लीनी।
काढन काज तिन्हें समरथ प्रभु, किधौं बांह ये दीरघ कीनी॥

भगवान्‌की कायोत्सर्गस्थित मुद्रा देखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है कि प्रभो! आपने अपनी दोनों विशाल भुजाओंको संसारकी कीचड़में फँसे प्राणियोंके निकालनेके लिए ही नीचे की ओर लटका रखा है। ऊपरके पद्यमें इसी भावकी दिखलाया गया है।

भगवान् शान्तिनाथकी स्तुति करता हुआ कवि कल्पना करता है कि देव लोग भगवान्‌को प्रतिदिन नमस्कार करते हैं, उनके मुकुटोंमें लगी नीलमणियों की छाया भगवान्‌के चरणोंपर पड़ती है, जिससे ऐसा मालूम पड़ता है, मानों भगवान्‌के चरण कमलोंकी सुगन्धका पान करने के लिए अनेक भ्रमर ही एकत्र हो गये हैं। कवि कहता है—

शांति जिनेश जयो जगतेश हरैं अघताप निशेष की नाईं।
सेवत पांय सुरासुरआय नमैं सिरनाय महीतल ताईं॥
मौलि लगे मनिनील दिपैं प्रभु के चरनों झलकै वह आई।
सूँघन पाय-सरोज सुगन्धि किधों चलि ये अलि-पंकति आई॥

जैन कवियोंने एक ही स्थानपर उपमेयमें उपमानकी उत्कटताकी संभावना

कर वस्तूत्प्रेक्षा या स्वरूपोत्प्रेक्षाका सुन्दर प्रयोग किया है। वाच्या और प्रतीयमाना दोनों ही प्रकारकी उत्प्रेक्षाओंके उदाहरण वर्द्धमान चरित्रमें आये हैं। कविने वर्द्धमान स्वामीके रूप-सौन्दर्यका निरूपण नाना कल्पनाओं द्वारा अलंकृत रूपमें किया है।

रूपकालंकारकी योजना करते हुए कवि बनारसीदासने कहा है कि कायाकी चित्रशालामें कर्मका पलंग बिछाया गया है। उसपर मायाकी सेज सजाकर मिथ्या कल्पनाका चादर डाला गया है। इसपर अचेतनताकी नींदमें चेतन सोता है। मोहकी मरोड़ नेत्रोंका बन्द करना है, कर्मके उदयका बल ही श्वासका घोर शब्द है और विषय सुखकी दौर ही स्वप्न है। कविने यहाँ उपमेयमें उपमानका आरोप बड़ी ही कुशलतासे किया है। कवि कहता है—

काया की चित्रसारी में करम परजँक भारी,
माया की सवारी सेज चादर कलपना।
शैन करे चेतन अचेतनता नींद लिए,
मोह की मरोर यहै लोचन को ढपना॥
उदै बल जोर यहै श्वास को शबद घोर,
विषै सुखकारी जाकी दौर यही सपना।
ऐसी मूढ़ दशा में मगन रहै तिहुँ काल,
धावे भ्रम-जाल में न पावे रूप अपना॥

वस्तुतः कवि बनारसीदासने अप्रस्तुतमें प्रस्तुतका केवल रूप-सादृश्य ही नहीं दिखलाया, किन्तु प्रस्तुतके भावको तीव्र बनाया है। निरंग रूपकोंमें सादृश्य, साधर्म्य तथा प्रभाव इन तीनों का ध्यान रखा है, पर साँग रूपकमें भी सादृश्य और साधर्म्यका पूरा निर्वाह किया है। कविने कई स्थलोंपर आत्मा और परमात्माके बीचके व्यवधानको दूर कर आत्माको ही अभेद रूप परमात्मो बतलाया है।

कवि भैया भगवतीदासके सिवा कवि वृन्दावनने भी अपनी कवितामें रूपकोंकी यथास्थान योजना की है। कवि वृन्दावन कहते हैं—

आदि पुरान सुनो भव कानन।
मिथ्यामत गयब गंजनको, यह पुरान सांची पंचानन॥
सुरगमुक्ति को मग दरसावत, भविक जीवको भवमय भानन॥

यहाँ पर आदिपुराणको सिंह और मिथ्यामतको गयन्दका रूपक दिया गया

है। आदिपुराणके अध्ययन और चिन्तनसे मिथ्यात्वबुद्धिका दूर हो जाना दिखलाया गया है। मिथ्यात्वका निराकरण सम्यक्त्वके प्राप्त होनेपर ही होता है। इसी कारण सम्यक्त्वको सिंह और मिथ्यात्वको मतंग—गज कहा जाता है। आदिपुराणका स्वाध्याय सम्यग्दर्शन उत्पन्न करता है, अतएव सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका कारण होनेसे कविने उसे सिंहका रूपक दिया है।

जैन कवियोंने प्रतिपाद्य विषयको प्रस्तुत करनेके लिए उन्हीं उपमानोंका उपयोग नहीं किया है, जो परम्परागत हैं। काव्यानुभूतिका सर्वाङ्गसुन्दर चित्र वहीं प्रस्फुटित होता है, जहाँ कविकी निजी अनुभूतिका उसके विचारोंसे सामञ्जस्य हो। यह अनुभूति जितनी विस्तृत और गम्भीर होती है, उतना ही प्रतिपाद्य विषय आकर्षक होता है। पुराने उपमानोंको सुनते-सुनते हमें अरुचि उत्पन्न हो गई है, अतएव नवीन उपमान ही हमें अधिक प्रभावित करते हैं तथा चर्वित-चर्वण किए हुए उपमानोंकी अपेक्षा प्रभाव भी स्थायी होता है। कवि बनारसीदासने अनेक नवीन उपमानोंके उदाहरण देकर वर्ण्य विषयको प्रभावशाली बनाया है। कवि बनारसीदासने उदाहरणालंकारका प्रयोग बहुत ही सुन्दर किया है। निम्नपद्य दर्शनीय हैं—

जैसे तृनकाठ बांस आरनै इत्यादि और, इंधन अनेक विधि पावक में दहिये।
आकृति विलोकत कहावै आगि नानारूप, दीसै एक दाहक सुभाउ जब गहिये ॥
तैसे नवतत्व में भयो है बहु भेखी जीव, शुद्ध रूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये।
जाही दिन चेतना शकतिको विचार कीजै, ताही छिन अलख अभेदरूप लहिये ॥

× × ×

जैसे बनवारी में कुधातुके मिलाप हेम, नाना भांति भयो पैं तथापि एक नाम है।
कसिके कसौटी लीक निरखे सराफ तांही, बानके प्रमान करि लेतु देतु दान है ॥
तैसे ही अनादि पुद्गलसौं संयोगी जीव, नवतत्त्वरूप में अरूपी महाधाम है।
दीसे उनमानसो उद्योत वान ठौर ठौर, दूसरौ न और एक आतमाहि राम है ॥

यहाँ कविने बतलाया है कि जैसे तृण, काष्ठ, बाँस आदिकी अग्नि भिन्न-भिन्न होनेपर भी एक ही स्वभावकी अपेक्षा एकरूप है, उसी प्रकार यह जीव भी नाना द्रव्योंके सम्पर्कसे नाना रूप होनेपर भी चेतना शक्तिकी अपेक्षासे अभेद एकरूप है।

ज्ञान के उदयतें हमारी दशा ऐसी भई,
जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातको ॥

कविने इस पद्यांशमें सूर्यके उदाहरण द्वारा ज्ञानकी विशेषता दिखलायी है।

कवि कहता है कि ज्ञानका उदय होनेसे हमारी ऐसी अवस्था हो गई है, जैसे सूर्यके उदय होनेपर प्रातःकालकी होती है। जिस प्रकार सूर्यका प्रकाश अन्धकारको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मोह अन्धकार दूर हो गया है।

कवि वृन्दावन और भूधरदासने भी उदाहरणालंकार द्वारा प्रस्तुतका भावोत्कर्ष दिखलाया है। भूधरदासने दृष्टान्तालंकारकी योजना निम्न पद्यमें कितने सुन्दर ढंगसे की है, यह दर्शनीय है—

अनम जलधि जलजान जान जनहंस मानकर।
सरब इन्द्र मिल आन आज जिस धरहिं शीसपर॥
पर उपगारी बान, बान उत्थपइ कुनय गन।
गनसरोज बन-भान, भान मम मोह तिमिरघन॥
घनवरन देह दुख-दाह-हर, हरखत हेरि मयूर मन।
मनमथ मतंग-हरि पास जिन, जिन विसरहु छिन जगतजन॥

यहाँ भगवान् पार्श्वनाथका ज्ञान उपमेय और सूर्य उपमान है तथा कमलका विकसित होना और अन्धकारका नष्ट होना समान धर्म है। बस, यही बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है।

कवि मनरंगलालने उपमेयकी समताका अभाव प्रदर्शित करते हुए असम अलंकारकी कितनी अनूठी योजना की है—

जा सम न दूली और कन्या देखि रूप लजे रती।

इसी प्रकार कवि भूधरदासने निम्न पद्यमें हृदयकी भावनाओं और मानसिक विचारोंको कितना साकार करनेका आयास किया है। भावोंके विकासमय आलोककी प्रोज्ज्वल राशि जगमगाती हुई दृष्टिगत होती है। कवि कहता है—

कृमिरास कुवास सराप दहै, शुचिता सब छीवत जात सही।
जिहि पान किये सुध जात हिये, जननी जन जानत नार यही॥
मदिरा सम आन निषिद्ध कहा, यह जान भले कुलमें न गही।
धिक है उनको वह जीभ जले, जिन मूढ़न के मत लीन कही॥

इस पद्य में कविने मदिराके समान अन्य हेय पदार्थका अभाव दिखलाकर मदिराकी अशुचिताका दिग्दर्शन कराया है। इसी प्रकार आखेटका निषेध करते हुए कवि कहता है कि "काननमें बसे ऐसो आन न गरीब जीव, प्राननसों प्यारे प्रान पूँजी जिस यहै है।" अर्थात् हिरणके समान अन्य कोई भी प्राणी दीन नहीं होता है।

एकके बिना दूसरेके शोभित अथवा अशोभित होनेका वर्णन कर विनोक्ति अलंकारकी योजना बड़ी ही चतुराईके साथ की गयी है। भैया भगवतीदासने—"आतमके काज बिन रज सम राज सुख, सुनो महाराज कर कान किन दाहिने"—में आत्मोद्धारके बिना राज्यसुखको भी धूल समान बताया है। कवि भूधरदासने राग बिना संसारके भोगोंकी सारहीनताका चित्रण करते हुए विनोक्ति अलंकारकी कितनी अनूठी योजना की है—

राग उदे भोग भाव लागत सुहावने से बिना ऐसे लागें जैसे नाग कारे हैं।
रागहीसों पाग रहे तनमें सदीव जीव राग गवे आवत गिलानि होत न्यारे हैं ।।
रागसों जगत रीति झूंठी सब सांच जाने राग मिटे सूझत असार खेल सारे हैं।
रागी बिन रागी के विचार में बड़ो ही भेद जैसे भटा पथ्य काहु काहुको वयारे हैं।।

कवि मनरंगलालने विनोक्ति अलंकारकी योजना द्वारा अपने अन्तरालकी व्यापकता और गहराईको बड़े ही अच्छे ढंगसे व्यक्त किया है—

नेम बिना जो नर पर्याय। पशु समान होती नर राय ।।

× × ×

नाथ तिहारे साथ दिन, तनक न मोहि करार।
ताते हमहू साथ तुम, चलसी तजि घर वार ।।

× × ×

हे पुत्र चली अब घरे हाल। तुम बिन नगरी सब है बिहाल ।।

कवि मनरंगलालने एक ही क्रिया शब्दको दो अर्थोंमें प्रयुक्त कर सहोक्ति अलंकारका भी समावेश किया है। कविने प्रत्येक अंगमें कामदेव और सुषमाको साथ ही रखा है—

अंग अंग में छायो अनंग। जहँ देखो तहँ सुखमा संग ।।

भैया भगवतीदासने हँसकी उक्ति देकर निम्न पद्यमें कितने सुन्दर ढंगसे चैतन्यका फन्देमें फँसना दिखलाया है। आपका अन्योक्ति अलंकार पर विशेष अधिकार है। तोता, मतंग आदिकी उक्तियोंसे आत्मकी परतन्त्रताकी विवेचना की है।

हँसा हँस हँस आप तुम, पूर्व सँवारे फन्द;
तिहिं कुदाव में बंधि रहे, कैसे होहु सुछन्द।
कैसे होहु सुछन्द, चन्द जिस राहु गरासे;
तिमिर होय वल जोर, किरण की प्रभुता नासे ।।

स्वपर भेद भासै न देह जड़, लखि तजि संसा;
तुम गुण पूरन परम सहज अवलोकहु हँसा।

× × ×

सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ;
आये धोखे आमके, यापै पूरण इच्छ॥

कवि मनरंगलालने निम्न पद्यमें अतिशयोक्ति अलंकारका समावेश कितने अनूठे ढंगसे किया है—

नासा लोल कपोल मझार। सब शोभा की राखन हार॥
ताहि देखि सुक बन में जाय। लज्जित ह्वै निवसे अधिकाय॥

कवि बनारसीदासने अपने अर्द्धकथानकमें आत्मचरित्रकी अभिव्यंजना करते हुए आक्षेपालंकारका कितना अच्छा समावेश किया है। कवि कहता है—

शंख रूप शिव देव, महा शंख बनारसी।
दोऊ मिले अवेव, साहिब सेवक एकसे॥

भैया भगवतीदास और बनारसीदासने श्लेषालंकारकी भी यथास्थान योजना की है। "अकृत्रिम प्रतिमा निरखत सु 'करो न धरी न भरी न धरी" में करीन, भरीन और धरीन पदके तीन-तीन अर्थ हैं। मोह अपने जालमें फँसाकर जीवोंको किस प्रकार नचाता है, कविने इसका वर्णन विचित्रालंकारमें कितना अनूठा किया है—

नटपुर नाम नगर अति सुन्दर, तामें नृत्य होंहि चहुँ ओर।
नायक मोह नचावत सबको, ल्यावत स्वांग नये नित ओर॥
उछरत गिरता फिरत फिरका दे, करत नृत्य नाना विधि घोर।
इहि विधि जगत जीव सब नाचत, राचत नाहिं तहां सुकिशोर॥

कवि बनारसीदासने आत्मलीलाओंका निरूपण विरोधाभास अलंकारमें करते हुए लिखा है—"एक में अनेक है अनेक ही में एक है सो एक न अनेक कुछ कह्यो न परतु है"। इसी प्रकार वृन्दावन और द्यानतरायने भी विरोधाभासकी सुन्दर योजना की है। परिकर समासोक्ति, उल्लेख, विभावना और यथासंख्य अलंकारोंका प्रयोग जैन काव्योंमें यथेष्ट हुआ है।

चित्र और संभूत

[जैन कथानक]

राजमन्त्री नमूची का अधःपतन हुआ। अतः काशी नरेश ने नमूची को प्राणदण्ड देकर डोम को सौंप दिया।

नमूची एक अच्छा गायक था। उसके मधुर कण्ठ का गीत सुनकर डोमपुत्र चित्र और सम्भूत के कण्ठ में भी गीत जाग उठा।

वीणा पर नमूची के गीत क्या थे मानो वर्षा की बूँदों से भरी नन्हीं-नन्हीं जूही हवा में थिरक उठी हों।

डोम उसका गीत सुनता। उसका मन कैसा-कैसा हो जाता। कुछ ऐसी अज्ञात भावनाएँ उसके मन और मस्तिष्क को झकझोर देतीं, जिनके विषय में उसने न कभी सोचा था न कभी समझा था। हो सकता है वे उसके अवचेतन मन में कहीं दबी हों। यही कारण था कि वह राजा की आज्ञा भी भूल गया।

परन्तु राजा की आज्ञा तो सर्वोपरि है। प्रकट रूप में उसे अमान्य करने का दुस्साहस वह नहीं कर सका। अतः सबकी आँखें बचाकर उसने नमूची को अपने घर में रखा। राज्याज्ञा है तो क्या हुआ? नमूची का प्राण तुच्छ हो सकता है, किन्तु उसके वे गीत जिनकी तुलना नहीं की जा सकती क्या कोई साधारण वस्तु है? फिर वह क्यों चिरकाल के लिए अपराधी बने। यही सोचकर उसे यह दुस्साहस करना पड़ा।

एक और घटना घटी। नमूची का गीत सुनकर डोम के घर की स्त्रियाँ विह्वल हो उठीं। वीणा की तारों के झंकार ने जब उन्हें आकृष्ट कर लिया तो ऊँच-नीच एवं गोरे-काले का सभी भेद-विभेद समाप्त हो गया। उन स्त्रियों से भूलें होने लगीं। अतः प्रचण्ड भूकम्प से जिस दिन डोम परिवार में दरारें पड़ने वाली थीं, नमूची उसी दिन वहाँ से गायब हो गया। क्योंकि अब डोम के द्वारा ही प्राण जाने की आशंका थी।

नमूची चला गया किन्तु चित्र और सम्भूत का गाना बन्द नहीं हुआ। उनके मन में थीं नयी उमंगें और कण्ठ में थीं स्वरलहरियाँ और साथ ही साथ थी गुणीं की मर्यादा को प्राप्त करने की प्रबल आकांक्षा। ओह! क्या वे उस दिन जान पाए कि डोम के घर वाणी की साधना को सहन करने की क्षमता उन दिनों किसी में नहीं थी। जो भी उनके गीत सुनते मुग्ध हो जाते, किन्तु

ज्योंही जान पाते कि ये गायक डोम हैं, छीः छीः कर उठते। सभी कहने लगते, पता नहीं आगे जाकर क्या होगा ! इन्हें प्रश्रय देना कदापि उचित नहीं। देश के प्रमुख शिरोमणि तक यही कहते, ऐसा तो न कभी आँखों देखा, न कानों सुना। इन्हें गीत गाने से रोकना ही चाहिए। एक डोम की इतनी हिम्मत !

तदुपरान्त सहसा न जाने कौन आया और वीणा के तारों को इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर डाला जैसे बाज पक्षी कबूतर पर झपट पड़ा हो। गीत बन्द हो गए।

किन्तु चित्र और सम्भूत के हृदय में अग्नि की लपटें उठने लगीं। जैसे भी हो डोम होने की जो पाषाणी प्राचीरें उन्हें चारों ओर से घेरे हुए हैं उन्हें ध्वंस करना ही होगा।

उस दिन समस्त रात्रि आँधी चलती रही। उसी झंझावात के मध्य किसी की दीर्घ निःश्वास डोम के कानों में तो पड़ी, किन्तु उठना चाहकर भी वह उठ न सका। सोचा, जो नव किसलय हवा में स्थिर नहीं हो पा रहे हैं, शायद उन्हीं का यह शब्द है। अतः पुनः वह सो गया।

दूसरे दिन प्रभातकालीन सुनहली किरणों ने जब डोम के आँगन में प्रवेश किया तब चित्र और सम्भूत को कहीं नहीं पाया गया।

फसल के खेतों को चीरती हुई जो राह पर्वत के बगल से विस्तृत थी उसी राह पर वे चल रहे थे। कुछ करेंगे अवश्य किन्तु क्या ? यह वे अभी तक सोचकर भी सोच नहीं पाए थे। अकस्मात् पर्वत पर उनकी भेंट हुई एक आचार्य से। उनके प्रशान्त मुख मण्डल से एक दिव्य ज्योति छिटक रही थी। उन्होंने इनकी दर्दभरी कहानी सुनी और मुस्कुराते हुए बोले 'कहाँ है वह दीवार ? कहीं नहीं है। यह तो तुम्हारा भ्रम मात्र है।' आचार्य ने उन्हें दीक्षा दी और दिया प्राणों का संजीवन मन्त्र।

अब वे विश्व के समस्त सुर ताल छन्द और गति को अपने में ही अनुभव करने लगे।

इसीलिए अब वे प्राचीरें कहीं नहीं रहीं। समाप्त हो गया था मानव का मानव से विभेद और टूट गयीं वे देश और विदेश की संकीर्ण सीमाएँ। अब तो सभी के साथ उन्होंने तादात्म्य जो स्थापित कर लिया है।

नमूची बन गए थे हस्तिनापुर के राजमन्त्री। भिक्षु चित्र और सम्भूत

हाथ में भिक्षा पात्र लिए आ खड़े हुए उसके प्रासाद के सम्मुख। यह देव इच्छा ही तो थी।

नमूची लज्जासे लाल हो उठा। वह सोचने लगा, कहीं ये उसके अधःपतन की बात न खोल दें। अतः नमूची की आज्ञा से उसके अनुचर उन्हें चण्डालपुत्र कहकर लज्जित करते हुए परिखा के उस पार छोड़ आए।

भिक्षु चित्र का हृदय तो इस अपमान से विचलित नहीं हुआ क्योंकि उसका मन था शुभ्र और निर्मल। अतः उसने तो सहज भाव से ही क्षमा कर दिया। किन्तु, सम्भूत के लिए ऐसा करना सम्भव न हो सका। उसका मन तो उनके प्रति आक्रोश से भर उठा जिन्होंने उन्हें घृणापूर्वक दुत्कारा था। अतः नमूचीकृत अपमान उसे काँटे की तरह चुभ रहा था।

सम्भूत के मन में तपस्या का गर्व था। वह अन्याय नहीं सहेगा। जिन्होंने अन्याय किया है उन्हें और इस समग्र हस्तिनापुर को वह तपः लब्ध शक्ति से जलाकर राख कर देगा।

किन्तु एक क्षण के लिए भी वह नहीं सोच पाया कि उन्हें जलाकर राख कर देने पर उसकी उपवास क्लिष्ट तपस्या की समस्त सार्थकता ही नष्ट हो जाएगी।

सनत्कुमार थे उस समय हस्तिनापुर के चक्रवर्ती सम्राट। उन्होंने जब यह बात सुनी तो स्थिर न रह सके। राजदण्ड फेंककर साधु के निकट जा पहुँचे और सभी की ओर से क्षमाप्रार्थी हुए।

सम्भूत क्षमा करने को तो बाध्य हुआ किन्तु उसका मन विचलित था। अतः धैर्य खोकर वह एक नयी मोड़ लेने को विवश हो गया।

चक्रवर्ती सम्राट! जिन्हें किसी बात का अभाव नहीं। कितना बड़ा परिवार, कितने दास-दासी, कितना धन-रत्न! सम्भूत सोचने लगा—यदि कुछ पाना ही है तो पाना चाहिए चक्रवर्ती के इस ऐश्वर्य को। बस, मुझे तो यही चाहिये।

मृत्यु के पश्चात् नवीन जीवन प्राप्त किया चित्र और सम्भूत ने। कामना के द्वारा जिस परिवेश की रचना सम्भूत कर बैठा था वह उसी में आबद्ध रहा। अतः उसका साथ छूट गया चित्र से।

वही सम्भूत अब कम्पिलपुर के चक्रवर्ती महाराजा ब्रह्मदत्त है। वह भी एक दिन था और आज भी एक दिन है।

जातिस्मरण ज्ञान होने पर सहसा उन्हें चित्र की याद हो आयी। उनका मन उससे मिलने को अधीर हो उठा। पर वह आज है कहाँ? हजारों वर्ष के अन्तराल का अतिक्रमण होना क्या सम्भव नहीं है? अवश्य सम्भव है।

सम्भूत ने कविता लिखी किन्तु, लिखा मात्र प्रथम चरण। जो द्वितीय चरण पूरा करेगा उसे वे आधा राज्य देंगे।

राज्य के लोभ से कितने ही कवि आये और कितने ही छन्दाचार्य। सभी द्वितीय चरण को मिलाने का प्रयत्न करते किन्तु मिला नहीं पाते राजा के मनोनुकूल। अतः लज्जित होकर लौट जाते। इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए।

एक दिन राज-उद्यान का माली आया। बोला, 'प्रभो! मैं पूरी करूँगा कविता।'

राजा ने कहा, 'ठीक है करो।'

माली ने जो पूर्त्ति दी वह राजा के मनोनुकूल थी। आषाढ़ के नीर भरे आकाश की भांति उनकी दोनों आँखें छलछला उठीं। स्निग्ध-कंठ से पूछा, 'क्या तुमने की है यह पूर्त्ति?'

माली उन्हें उद्यान में ले गया। राजा की दृष्टि एक ध्यानमग्न तरुण तापस पर पड़ी।

'कौन? चित्र! हाँ हाँ, यह चित्र ही तो है।'

चित्र ने दृष्टि उठायी। उस दृष्टि में थी असीम करुणा, असीम तृप्ति।

सम्भूत ने कहा, 'तुम्हारी यह तपःक्लिष्ट देह और यह मुनिवेश मैं देख नहीं सकता। तुम्हारी सुकोमल देह के लिए यह शोभनीय नहीं है।'

चित्र ने पुनः मुस्कुराते हुए कहा, 'मुझे तो इसमें कोई कष्ट नहीं है।'

'किन्तु मैं तुम्हे नहीं छोड़ सकता। अब आधा राज्य तुम्हारा है।'

चित्र ने हँसकर कहा, 'क्या तुम मुझे इस प्रकार पकड़कर रख सकोगे? जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न देखता है, उसी प्रकार का है यह भी एक स्वप्न। न जाने कब टूट जाय। फिर तो इसका कोई चिन्ह भी शेष नहीं रह जाएगा। क्या करूँगा मैं स्वप्न देखकर। मैं तो देख रहा हूँ उस शाश्वत सत्य को जिसे पाकर कुछ पाने की कामना ही नहीं रह जाती। तुम भी आओ ना! क्या तुम्हारा मन उसे पाने को नहीं करता?'

'अर्थात् उस शून्य की प्राप्ति, जब कुछ भी पाने की इच्छा ही न हो?'

'नहीं, पूर्णता की प्राप्ति। आखिर कितने दिन पाने न पाने के इस द्वन्द्व में तुम पड़े रहोगे ? यही है दुःख और यही है माया का बन्धन। तुम्हारे सामने है अमृत। क्या तुम इस अमृत का पान करना नहीं चाहते ?'

'यह सब झूठ है। भ्रम है।'

दोनों का मन मिल न सका। भला मिलता भी कैसे ? आज उनके मध्य भोग और त्याग की लक्ष-लक्ष योजन की दूरी जो है।

चित्र चला गया सुख-दुःख की सीमा पार कर अनन्त प्रकाशपुंज के मध्य।

और सम्भूत पड़ा रहा नदी के इस पार जहाँ कामना का असह्य दंश है, भोग की अतृप्ति से जहाँ का आकाश आकुल है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

लोकान्तिक देवों के 'तीर्थ स्थापन करिए' यह स्मरण करा देने पर कुन्थुनाथ ने एक वर्ष तक वर्षी दान दिया और राज्यभार पुत्र को सौंप दिया। उनका महाभिनिष्क्रमण उत्सव राजाओं और देवों द्वारा अनुष्ठित होने पर वे विजया नामक शिविका पर आरोहण कर सहस्राम्रवन उद्यान में गए। वह उद्यान वसन्त के आविर्भाव से मनोरम बना हुआ था। तरुण युवकों की भाँति दक्षिण पवन चम्पक कलिका को चूम रही थी, सहकार शाखा को आन्दोलित कर रही थी, वासन्तिकाओं को नृत्य करा रही थी, निर्गुण्डियों को आनन्दित कर रही थी, लवलियों को आलिंगन दे रही थी, मल्लिकाओं का स्पर्श सुख ले रही थी, कृष्ण कलिकाओं को प्रस्फुटित कर रही थी, कमल पुष्पों को अभिनन्दित कर रही थी, अशोक मंजरी को सान्निध्य दे रही थी, कदली वृक्षों के प्रति अनुराग प्रकट कर रही थी। हिंडोलों में झूमती हुई सुन्दरियों द्वारा वह वन और भी सुन्दर हो उठा था। विलासी नगरवासी वहाँ आकर पुष्प चयन कर रहे थे। भ्रमरों के गुंजन और उन्मत्त कोकिलाओं की कुहक से वह वन सबका स्वागत कद रहा था।

कुन्थुनाथ शिविका से नीचे उतरे और उस वन में प्रविष्ट हुए तदुपरान्त अलंकारादि खोलकर वैशाख कृष्णा पंचमी को चन्द्र जब कृत्तिका नक्षत्र में अवस्थित था उन्होंने एक हजार राजाओं के साथ प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण के साथ-साथ उन्हें मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ। तदुपरान्त दो दिनों के उपवास का पारणा दूसरे दिन सुबह उन्होंने चक्रपुर के राजा व्याघ्रसिंह के घर पायसान्न ग्रहण कर किया। देवों ने रत्न वर्षादि पंच दिव्य प्रकट किए। राजा व्याघ्रसिंह ने जहाँ प्रभु खड़े हुए थे वहाँ एक रत्नवेदी का निर्माण करवाया।

अनासक्त वायु की भाँति अप्रतिहत प्रभु ने सोलह वर्ष छद्मस्थ अवस्था में विचरण किया। प्रव्रजन करते हुए एक दिन वे सहस्राम्रवन में लौट आए और दो दिनों के उपवास के पश्चात् तिलक वृक्ष के नीचे प्रतिमा धारण कर अवस्थित हो गए। चैत्र शुक्ला तृतीया को चन्द्र जब कृत्तिका नक्षत्र में

अवस्थित था तब घाती कर्मों के क्षय हो जाने से प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। तब चार श्रेणियों के देव और उनके इन्द्रने अविलम्ब वहाँ आकर तीन प्राकारों से समन्वित समवसरण की रचना की। देवों द्वारा संचालित स्वर्ण कमलों पर पैर रखते हुए प्रभु पूर्व द्वार से उस समवसरण में प्रविष्ट हुए। वहाँ ४२० धनुष दीर्घ चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा देकर जगद्गुरु धर्म चक्रवर्ती कुन्थुनाथ नमो तित्थाय कहकर पूर्वाभिमुख होकर पूर्व दिशा में रखे सिंहासन पर उपविष्ट हुए। उनकी शक्ति से व्यंतर देवों ने उनके अनुरूप तीन मूर्तियों का निर्माण कर तीन ओर रखा। चतुर्विध संघ यथायोग्य स्थित हुआ। पशु मध्य प्राकार में और वाहनादि निम्न प्राकार में रखा। समवसरण की रचना ज्ञात होने पर कुरुराज वहाँ आए और उन्हें प्रणाम कर इन्द्र के पीछे करबद्ध होकर बैठ गए। फिर भगवान को पुनः प्रणाम कर सौधर्मेन्द्र और कुरुराज आनन्दित मन से इस प्रकार स्तुति करने लगे—

चतुर्विध धर्म के चतुर्शरीर रूपी हे चतुर्मुख, मनुष्यों के चतुर्थ वर्ग (मोक्ष) के प्रवक्ता आपकी जय हो। मोहमुक्त होने के कारण चतुर्दश रत्नों का परित्याग कर हे त्रिलोकनाथ, आपने अनिन्द्य त्रिरत्न धारण किए हैं। यद्यपि आप राग रहित हैं फिर भी आपने सभी के हृदयों को जीत लिया है। यद्यपि आप निःस्वार्थ हैं फिर भी आप सर्व शक्तिमान हैं। यद्यपि चन्द्र-से आपके कंचन वर्णका सभी ध्यान करते हैं फिर भी आप ध्यान के निवास रूप हैं। यद्यपि कोटि-कोटि देव आपको घेरे हुए हैं फिर भी आप निःसंग हैं। यद्यपि आपका प्रेम सभी के लिए है फिर भी आप स्वयं प्रेम से रहित हैं। यद्यपि आप अकिंचन हैं फिर भी पृथ्वी की परम सम्पदा हैं। हे भगवन्, हे सत्रहवें तीर्थंकर, आपका रूप अगम्य है, आपकी शक्ति अगम्य है, आप निखिलजन तारक हैं। हे प्रभो, आपको नमस्कार। आप जनसाधारण के लिए अचिन्त्य मणिरत्न स्वरूप हैं। वाणी से आपकी प्रशंसा और मन से आपका ध्यान जितना ही किया जाय उतना ही कम है। हे भगवन्, हम आपकी पूजा ध्यान और स्तुति निरन्तर कर सकें इसके अतिरिक्त हमारी कोई इच्छा नहीं है।

इस भाँति स्तुति कर उनके निवृत हो जाने पर भगवान कुन्थुनाथ ने निम्नलिखित देशना दी—

चौरासी लाख योनि रूप भंवरों से पूर्ण यह संसार रूपी भव समुद्र महा भयंकर और दुःखों का कारण है। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने पर सुदृढ़ मन

शुद्धि रूप जहाज विवेकियों को इस भव सागर से उत्तीर्ण कराने में समर्थ है। ज्ञानियों के लिए मनःशुद्धि मोक्षमार्ग प्रदर्शन कारी एक ऐसी दीपशिखा है जो कभी निर्वापित नहीं होती। वहाँ अप्राप्त गुण स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ मनःशुद्धि नहीं वहाँ प्राप्त गुण भी लुप्त हो जाते हैं। अतः प्रज्ञाशील व्यक्तियों के लिए निरन्तर मन को शुद्ध रखना उचित है। जो बिना मनःशुद्धि के मुक्ति के लिए तपस्या करते हैं वे जहाज परित्याग कर तैरकर समुद्र पार करने की चेष्टा करते हैं। अन्धे के लिए जैसे दर्पण व्यर्थ है उसी प्रकार मनः शुद्धि के बिना तपस्वी का ध्यान भी व्यर्थ है। चक्राकर वायु जैसे राह चलते लोगों को उठाकर अन्यत्र फेंक देता है उसी प्रकार मोक्ष पथ के यात्रियों को चंचल और अविशुद्ध मन अन्यत्र ले जाता है।

निरंकुश और निःशंक विचरणकारी मन रूपी निशाचर त्रिलोक के प्राणियों को संसार रूपी गह्वर में लाकर पटक देता है। मनको अवरोध किए बिना जो योग साधना में प्रवृत्त होते हैं वे उसी प्रकार हास्यास्पद और व्यर्थ होते हैं जैसे लंगड़े व्यक्ति का पैरों से चलकर गाँव में जाने की इच्छा व्यक्त करना। जो मन को जीत लेता है उसके समस्त कर्मनिरुद्ध हो जाते हैं और जिनका मन पर शासन नहीं उसके कर्म दिन प्रतिदिन बढ़ते रहते हैं। मन रूपी मर्कट सर्वत्र विचरण करना चाहता है अतः जो मुमुक्षु है उनके लिए उचित है कि दृढ़ संकल्प द्वारा उसे नियन्त्रित करें, सर्व प्रकार से शुद्ध करें। मनःशुद्धि बिना तप, संयम और स्वाध्याय का प्रयोजन ही क्या है? कारण बिना मनःशुद्धि के वे केवल देह पर्यवसित हैं। मनकी विशुद्धि के द्वारा ही एक मात्र राग और द्वेष पर विजय प्राप्ति की जा सकती है ताकि आत्मा स्व-स्वरूप में निष्कलंक भावसे अवस्थित रहें।

उनकी यह देशना सुनकर बहुत से प्रव्रजित हो गए और स्वयंभू आदि ३५ गणधर हुए। प्रथम याम बीत जाने पर प्रभु देशना से निवृत्त हुए। तब उनके पादपीठ पर बैठकर स्वयंभू गणधर ने देशना दी। द्वितीय याम बीत जाने पर वे भी देशना से निवृत्त हो गए, देव और अन्यजन भगवान कुन्थुनाथ को प्रणाम कर स्व-स्व लोक चले गए।

भगवान कुन्थुनाथ के तीर्थ में कृष्णवर्णीय हंस वाहन गन्धर्व नामक यक्ष उत्पन्न हुए। जिनके दाहिने हाथों में एक में पाश था दूसरा वरद मुद्रामें था और बायें हाथों में एक में बिजोरा और दूसरे में अंकुश था। वे भगवान के शासन देव बने। उनके तीर्थ में शुक्लवर्णा मयूरवाहिनी वला

नामक [यक्षिणी उत्पन्न हुयी। उनके दाहिनी ओर के हाथों में से एक में बिजोरा और दूसरे में अंकुश था एवं बाँए हाथों में से एक में भुषण्डी और दूसरे में कमल था। सर्वदा निकट रहती हुयी वे उनकी शासन देवी बनी।

भव्य जीवों की मुक्ति के लिए जगद्गुरु उनके साथ पृथ्वी पर सर्वत्र विचरने लगे। भगवान कुन्थुनाथ के संघ में ६०००० साधु एवं ६०६०० साध्वियाँ, ६७० पूर्वधारी, २५०० अवधि ज्ञानी, ३३४० मनःपर्याय ज्ञानी, ३२०० केवलज्ञानी, ५१०० वैक्रिय लब्धिधारी, १२००० वादी, १७९००० *श्रावक तथा ३८१००० श्राविकाएँ थीं।*

केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् २३७३४ वर्ष बीत जाने पर निर्वाण समय निकट जानकर प्रभु १००० मुनियों सहित सम्मेत शिखर पधारे और अनशन ग्रहण कर लिया। एक मास पश्चात् बैशाख कृष्णा प्रतिपदा के दिन चन्द्र जब कृत्तिका नक्षत्र में था तब उन्होंने १००० मुनियों सहित मोक्ष प्राप्त किया। भगवान कुन्थुनाथ की पूर्ण आयु ९५००० वर्षकी थी, जो कि युवराज, राजा, चक्रवर्ती और व्रती रूप में समान भाग में विभक्त थी। भगवान शान्तिनाथ के निर्वाण के अर्द्ध पल्योपम पश्चात् भगवान कुन्थनाथ निर्वाणको प्राप्त हुए। इन्द्र और देवों ने उनका निर्वाण महोत्सव मनाया और उनके दन्तादि अवशेष पूजा के लिए स्व-स्व वासस्थान पर ले गए।

प्रथम सर्ग समाप्त।

द्वितीय सर्ग

इक्ष्वाकु वंश के तिलक गोरोचनवर्णीय और चतुर्थ आरा रूप सरिता के हंस भगवान अरनाथ की जय हो। मैं यहाँ त्रिलोक रूपी कमल के लिए आनन्ददायी चन्द्र रूपभगवान अरनाथ का जीवन-वर्णन करूँगा।

जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में सीता नदी के उत्तरी तट पर वत्स नामक विजय में सुसीमा नामक एक नगरी थी। वहाँ के राजा का नाम था धनपति। वे जैसे असीम साहसी थे वैसे ही धर्मपरायण थे। वे जब इस पृथ्वी पर शासन करते थे तब बन्धन, प्रताड़न, अंगभंगादि दण्डों का प्रयोग नहीं होता था। कारण प्रजाजनों में कलह या विवाद ही नहीं था। वे परस्पर प्रेमभावापन्न होकर रहते थे मानों समस्त पृथ्वी धर्म संघमें परिणत हो गयी है। जिन प्ररूपित धर्म उनके करुणामय हृदय में सर्वदा हंस की तरह निवास करता था। क्रमशः इस संसार की निरर्थकता अनुभव कर उन्होंने संसार से विरक्त होकर संवर की साधना के लिए सम्बर नामक मुनि से दीक्षा ग्रहण कर

ली। कठोरतापूर्वक धर्म पालन और तप कर वे पृथ्वी पर पर्यटन करने लगे। यद्यपि वे कर्मों के शत्रु थे फिर भी बीस स्थानक की उपासना और अर्हत् भक्ति कर तीर्थंकर नाम गोत्र उपार्जन किया। कालान्तर में ध्यानासन में देह त्याग कर नवम ग्रैवेयक विमान में अहमिन्द्र रूप में उत्पन्न हुए।

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नामक एक महानगरी थी। वहाँ के राजा सेवा-कर्म के लिए ही प्रजा की सेवा करने हेतु जन्म ग्रहण करते थे। विमानादि अतुल वैभव के कारण ही वहाँ के प्रजाजन राजा-से लगते थे। नगरी की परिखा देखकर लगता नगरी के सौन्दर्य को चिरस्थायी करने के लिए ही सृष्टिकर्ता ने वह रेखा खींच दी थी। बहुविध स्वर्ण, स्फटिक और इन्द्रनील मणियों के भवन देखकर लगता मानो वे मेरु, कैलास और अंजन गिरि के शिखर हैं। स्वर्ग के वृत्रघ्न-से वहाँ के राजा थे चन्द्र-से सुन्दर सुदर्शन। धर्म तो मानो उनका मित्र ही था जिसका साहचर्य वे क्या नगर में, क्या बाहर, क्या शयन कक्ष में कभी भी परित्याग नहीं करते थे। उनका प्रताप मंत्र की भाँति विस्तृत होने के कारण उनकी सेना तो मात्र अलंकार रूप थी। राजा लोग प्रतिदिन उन्हें जो हस्ती उपहार में देते उनके मदक्षरण से राजप्रासाद के चत्वर की धूलि निवारित होती रहती।

अन्तःपुर की अलंकार स्वरूपा उनकी प्रधान महिषी का नाम था देवी। इन्हें देखकर लगता मानों स्वर्ग की कोई देवी ही मृत्युलोक में अवतरित हुयी है। उनका स्वभाव इतना कोमल था कि प्रणय में भी उन्होंने कभी अपने पति के प्रति कोप प्रकट नहीं किया और उदार हृदयी होने के कारण नहीं कभी अपनी सौतों के प्रति ईर्ष्या। पति का प्रेम व स्व-सौन्दर्य पर वे कभी गर्वित नहीं होती थीं जब कि वे रमणियों में रत्नरूपा थीं। उनका प्रतिरूप, जिनका देहसौष्ठव अनिंद्य था व जो सौन्दर्य की मानो सरिता थी वह मात्र दर्पण में ही देखा जाता था, अन्यत्र नहीं। उनके साथ सुखभोग करते हुए राजश्रेष्ठ दीर्घ-बाहु सुदर्शन ने देवों की तरह कुछ काल व्यतीत किया।

आनन्द में निमज्जित धनपतिका जीव ग्रैवेयक विमान की आयु पूर्ण कर फाल्गुन शुक्ला द्वितीया के दिन चन्द्र जब रेवती नक्षत्र में अवस्थित था वहाँ से च्यवकर महारानी देवी के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। रात्रि के शेष याम में सुख शय्याशायीन उन्होंने तीर्थंकर के जन्म सूचक चौदह महास्वप्न देखे। तीन ज्ञान का अधिकारी, वह भ्रूण उन्हें किसी भी प्रकार का कष्ट दिए बिना उनके देह सौन्दर्य को वर्द्धित करते हुए गुप्त रूप से बढ़ने लगा। अग्रहायण

मास की शुक्ला दसमी को चन्द्र जब रेवती नक्षत्र में अवस्थित था महारानी देवी ने स्वर्ण वर्णीय सर्व सुलक्षणयुक्त नन्दयावर्त लांछन युक्त पुत्र को जन्म दिया। छप्पन दिककुमारियों ने उनका कृत्य सम्पन्न किया और चौसठ इन्द्रों ने मेरु पर्वत पर उनका जन्माभिषेक किया। उनकी देह पर अंगराग कर पूजा और आरती की। तत्पश्चात् सौधर्मेन्द्र ने इस प्रकार स्तुति की—

जिनके अठारह दोष विनष्ट हो गए हैं, जिनका अठारह प्रकार के ब्रह्मचारीगण ध्यान करते हैं ऐसे अठारहवें तीर्थंकर आपको मैं प्रणाम करता हूँ। गर्भ से ही तीन ज्ञान जिस प्रकार आप में वर्तमान थे उसी प्रकार यह त्रिलोक आप में समाहित है। राग-द्वेष रूपी दस्यु इतने दिनों तक इस संसार को मोह-रूपी निद्रा के वशीभूत कर शासन कर रहे थे। अब हे प्रभु, आप उनका उद्धार करें। क्लान्त पथिकों के लिए रथ सदृश, पिपासार्त्त के लिए नदी-से, तपन तापसे क्लिष्ट के लिए वृक्ष की छाया-से, डूबते हुए मनुष्य के लिए नौका-से, रोगी के लिए आरोग्य-से, अंधकार क्लिष्ट के लिए आलोक-से, पथ-भ्रष्ट के लिए पथ प्रदर्शक की तरह, व्याघ्रभीत के लिए अग्नि की तरह, हे तीर्थनाथ, दीर्घ दिनों से प्रभु से वंचित हमने आपको प्रभु रूप में प्राप्त किया है। प्रभु रूप में आपको पाकर देव, असुर और मनुष्य जैसे नवीन चन्द्र देखने सब एकत्रित होते हैं उसी प्रकार यहाँ एकत्रित हुए हैं। हे भगवन्, मैं आप से और कुछ नहीं चाहता केवल इतना ही चाहता हूँ कि जन्म-जन्म में आप मेरे प्रभु बनें।

इस प्रकार स्तुति कर सौधर्मेन्द्र प्रभु को लेकर हस्तिनापुर गए और उन्हें महारानी देवी के पार्श्व में सुला दिया। राजा सुदर्शन ने पुत्र जन्मोत्सव किया। महारानी देवी ने स्वप्न में चक्के का अर देखा था इसलिए जातक का नाम रखा अर। मित्ररूपी देवों के साथ धात्रीरूपिनी देवियों द्वारा अनुमोदित क्रीड़ा करते हुए वे क्रमशः बड़े हुए। तीस धनुष दीर्घ अरनाथ ने पिता का आदेश पालन करने के लिए यथा समय विवाह किया। तदुपरान्त एक सौ हजार वर्ष व्यतीत होने पर पिता की आज्ञा से ही राज्यभार ग्रहण किया।

२१००० वर्ष और बीत जाने पर उनकी आयुध शाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। अतः चक्र एवं अन्य तेरह रत्नों का अनुसरण करते हुए अरनाथ ने ४०० वर्ष में समग्र भरत क्षेत्र को जीत लिया।

एक सौ हजार वर्ष चक्री रूप में व्यतीत होने पर लोकान्तिक देवों ने आकर तीर्थ स्थापित करने को कहा। प्रभु ने एक वर्ष तक वर्षीदान देकर राज्यभार पुत्र अरिनन्दन को सौंपकर एवं वैजयन्ती पालकी में बैठकर सहस्राम्रवन उद्यान में गए। नन्दयावर्त लांछनयुक्त प्रभु ने उस उद्यान में प्रवेश किया जहाँ कोकिलाएँ मौन व्रतधारी साधुओं की तरह वृक्षशाखाओं पर बैठी थीं। पथिक वहाँ गोप बन्धुओं के संगीत से आकृष्ट होकर आए थे। नगर विलासिनियों के दीर्घ केश-भार से मानों लज्जित होकर मयूर अपने पंखों को फेंक कर इक्षु क्षेत्र में आश्रय लिए हुए थे। पुन्नाग पुष्पों की गन्ध से भ्रमर उन्मत्त हो उठे थे और फूल एवं कमला नींबू के सम्भार से समस्त वन ने हरिद्रावर्ण धारण कर रखा था। लावली, फलिनी, यूथी, मुचकुन्द फूलों ने शीत ऋतु के हास्य की भाँति विकसित होकर समस्त उद्यान को आलोकित कर रखा था। लोघ्र फूलों के पराग ने आकाश को अन्धकारमय कर रखा था। वैजयन्ती शिविका से उतरकर दो दिनों के उपवासी प्रभु ने एक हजार राजाओं के साथ अग्रहायण शुक्ला एकादशी के दिन चन्द्र जब रेवती नक्षत्र में अवस्थित था स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षा ग्रहण के साथ-साथ उन्हें मनःपर्याय ज्ञान उत्पन्न हुआ। द्वितीय दिन प्रभु ने राजपुर नगर के राजा अपराजित के घर पर क्षीरान्न ग्रहण कर पारना किया। देवों ने पाँच दिव्य प्रकट किए। राजा अपराजित ने प्रभु जिस स्थान पर खड़े हुए थे वहाँ एक रत्नवेदी का निर्माण करवाया।

[क्रमशः

संकलन

॥ विवेक में ही धर्म है ॥

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा कि भन्ते ! धर्म क्या है ? खाने-पीने, बोलने, चलने सब में हिंसा होती है अतः वह क्या साधन है जिससे पाप कर्मों का बंधन नहीं होता ? भगवान ने फरमाया—"विवेगे धम्म माहिए" अर्थात् विवेक में ही धर्म है। विवेकपूर्वक खाने वाला, विवेक-पूर्वक बोलनेवाला, विवेकपूर्वक चलनेवाला पाप कर्मों के बंधन से बचता है।

वस्तुतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विवेक ही मुख्य है। मनुष्य एवं जानवर में केवल बुद्धि का ही अन्तर नहीं है बल्कि मुख्य अन्तर विवेक का है। जिस मनुष्य में विवेक नहीं वह पशु के समान ही आचरण करने लगता है। हम परिवार, समाज, ग्राम, राज्य, देश एवं विश्व के बीच रहते हैं। यदि परिवार में छोटे-बड़े का विवेक नहीं हो, मर्यादा का विवेक नहीं हो तो उस परिवार में अशान्ति और कलह ही पैदा होगा। इसी प्रकार जहाँ से भी हमारा संपर्क, संबंध परिचय है वहाँ पग-पग पर विवेकपूर्वक हमें व्यवहार करना होता है। जब कहीं हमारा आचरण विवेकशून्य होता है तो वह आचरण निन्दा, अपयश एवं अशान्ति का कारण बनता है।

खाने में विवेक न रहे तो हम बीमार हो जायें, बोलने में विवेक न रखें तो विवाद हो जाए, चलने में विवेक न रखें तो ठोकरें खाते फिरें। इसी प्रकार जीवन व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में विवेक की आवश्यकता है। भगवान् महावीर का यह एक वाक्य जीवन जगाने के लिए पर्याप्त है कि विवेक में ही धर्म है। अविवेक से की गई धार्मिक क्रियाएँ भी निष्फल ही होती हैं। ज्ञान का सार विवेक है।

हमें अपने जीवन कल्याण के लिए विवेक दृष्टि जागृत रखनी चाहिए। यदि हमारा प्रत्येक कार्य विवेकपूर्ण होगा तो हम पापकर्मों से भारी नहीं होंगे, हमारा आत्म विकास होगा।

—पुखराजमल एस० लूंकड़

जैन प्रकाश, १५ अक्टूबर १९९०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

तुलसी प्रज्ञा ।। दिसम्बर १९९०

इस अंक में है 'अहिंसा और अपरिग्रह सिद्धान्त का सम्बन्ध निरूपण' (समणी मल्लिप्रज्ञा), 'जीव और शरीर के सम्बन्ध सेतु' (समणी मंगलप्रज्ञा), 'हिन्दी जैन काव्य : दार्शनिक प्रवृत्तियां' (डॉ० मंगल प्रकाश मेहता), 'भगवती आराधना एवं प्रकीर्णकों में आराधना का स्वरूप' (जिनेन्द्र कुमार जैन), 'जैन शास्त्रों में भक्ष्याभक्ष्य विचार' (नन्दलाल जैन), 'जैन एवं अन्य भारतीय दर्शनों में मोक्ष दशा : एक तुलनात्मक दृष्टि' (कमला जोशी), 'Geometrical and Philosophical Aspects of Theory of Relativity' (Muni Mahendra Kumar), 'The Concept of Pramana in Jainism : An Introduction' (Narendra Kumar Dash), 'Some Problems of Magadhi Dialect' (Jagat Ram Bhattacharyya).

सम्बोधि ।। फरवरी १९९०

इस अंक में है 'A Glimpse of Medical Recipes of the Jainas' (J. C. Sikdar), 'Jain Institutions' (Kumarpal Desai), 'जैत्र-सूरिशिष्य कृत वीतराग स्तुति' (मधुसूदन ढांकी), 'जैन दर्शन अने संस्कृत भाषा' (अमृत उपाध्याय), 'पुरातत्वाचार्य मुनिश्री जिन विजयजी : जीवन अने कार्य' (रमणीक शाह), 'महापुराण और भागवत में भरत चरित' (हरनारायण पाण्ड्या), 'विपाक सूत्र और अवदान शतक का तुलनात्मक अध्ययन' (पारुल्ल मांकड) ।

सम्बोधि ।। आचार्य हेमचंद्र नवम शताब्दी महोत्सव १९८८

इस अंक में है 'Hemacandra's Treatment of the Alamkara and Rasa Traditions' (V. N. Kulkarni), 'Hemacandra's Pramana Mimansa—Some Striking Features' (E. A. Solomon), 'हेमचंद्राचार्यनी साहित्य साधना' (कुमारपाल देसाई), 'गुजरातना धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन माँ हेमचन्द्राचार्यनुं प्रदान' (हरि प्रसाद शास्त्री), 'हेमचन्द्राचार्य अने अणहिलवाड पाटण' (आर० एन० महेता), 'हेमचन्द्र-

कालीन गुजरात नो साहित्यिक परिचय' (भोगीलाल सांडेसरा), 'देशीनाम माला : तेनुं क्षेत्र, स्वरूप, अने महत्व' (हरिवल्लभ भायानी), 'आचार्य हेमचंद्रना काव्यानुशासनमाँ 'नाटक' विचार' (तपस्वी नान्दी), 'द्वयाश्रय महाकाव्य परंपरामाँ द्वाश्रय महाकाव्य—कुमारपाल चरित्रनु मूल्यांकन' (नारायण कंसरा), 'योगशास्त्रमाँ आचार धर्म, (रमेश बेटाई), 'हेमचन्द्राचार्यना युगनी भौतिक संस्कृति' (आर० एन० महेता), 'हेमचन्द्रना समयनुं भारत' (हरि प्रसाद शास्त्री), 'आचार्य हेमचन्द्रनु कोश साहित्य' (भोगीलाल जे० सांडेशरा), 'Hemacandra on Svattika Bhavas' (M. Kulkarni), 'Anya-Yogavyavacchedika—A Study' (Y. S. Shastri), 'प्रमाण लक्षण निरूपण में प्रमाण मीमांसा का अवदान' (सागरमल जैन), 'आचार्य हेमचन्द्र का प्राकृत व्याकरण और अर्धमागधी भाषा : एक मूल्यांकन' (के० चन्द्र), 'आचार्य हेमचन्द्र : एक युग पुरुष' (सागरमल जैन), 'Acarya Hemacandra : Select Bibliography' (Saloni Joshi).

ODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253

Vol. XIV No. 10 **TITTHAYARA** **February 1991**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73